

शिक्षकों की कलम से

हमारा प्रयास है कि इस कॉलम के माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षक अपने अनुभवों को साझा कर सकें। कुछ अनुभव प्रस्तुत हैं। इन पर अपनी राय दीजिए। साथ ही, गुज़ारिश है कि आप अपने अनुभवों को भी जरूर साझा करें।

1. बच्चे, किताबें और कुछ अनुभव . पारुल बत्रा
2. सामाजिक विज्ञान के चश्मे से... . अंजना त्रिवेदी
3. गोल-मोल भूगोल . जीतेन्द्र 'जीत'



चित्र: रंजीत बालमुचु

बच्चे, किताबें और कुछ अनुभव

पारुल बत्रा



कुछ समय पहले भोपाल के नए उपनगरों की परिधि पर स्थित कुछ ग्रामीण और झुग्गी बस्ती के सरकारी स्कूलों में जाने का अवसर बना। मैं इन सभी स्कूलों में एक कार्यक्रम के अन्तर्गत कहानी सुनाने के लिए गई थी। बच्चों के साथ हुए किताबों की विषयवस्तु पर आधारित कुछ अनुभवों को यहाँ साझा कर रही हूँ।

मैंने तीन स्कूलों में कुछ चुनिन्दा कहानियाँ सुनाईं। इनमें से ज्यादातर बच्चे पहली से तीसरी कक्षा के थे। सबसे पहले मैं बच्चों से पूछती कि वे कैसी कहानी या किस पात्र पर कहानी सुनना चाहते हैं। सभी बच्चे अपने पसन्दीदा जानवरों के नाम बताते जैसे शेर, खरगोश, चूहा आदि जो सामान्यतया परिचित जानवर ही होते।

मेरे पास इन सभी पर कहानियाँ थीं लेकिन एक बच्चे ने कहा कि वो 'चील' पर कहानी सुनेगा और एक ने कहा कि 'उल्लू' पर। मुझे ये नाम सुनकर अच्छा लगा क्योंकि इन जानवरों पर कम ही कहानियाँ पढ़ने-सुनने को मिलती हैं। संयोग से मेरे पास ऐसी कहानियाँ भी थीं जिनमें चील और उल्लू महत्वपूर्ण पात्र थे।

कहानी सुनाने के इस दौर में एक स्कूल में जब कुछ बच्चों ने कहा कि हमें ऐसी कहानी सुनाओ जिससे हमें कुछ शिक्षा मिले तो मैं हैरान रह गई। गौरतलब है कि हमारी स्कूली शिक्षा ने पाठ्यपुस्तकों के पाठों से शिक्षा देने का कर्म इस निष्ठा से निभाया है कि बच्चे खुशी और आनन्द की स्रोत कहानियों में भी शिक्षा पाने के लिए अभिशप्त हैं। मैंने अपना प्रश्न दोहराते हुए कहा, "मैंने आपसे यह नहीं पूछा था कि कहानी क्यों सुनना चाहते हो, मैंने तो पूछा था किसकी कहानी सुनना चाहते हो।" और इस तरह मैं गूढ़ शिक्षा से हटकर बच्चों का ध्यान कहानी के पात्रों की ओर दिलाने में कुछ हद तक सफल हो पाई।

सबसे पहले मैंने रूम टू रीड संस्था द्वारा प्रकाशित और लेखक प्रभात द्वारा एक लोककथा की पुनर्लिखित कहानी चुहिया और चिड़िया सुनाई।

इस कहानी के घटनाक्रम में जब चिड़िया पानी पीने नदी पर जाती है तो चुहिया भी साथ जाती है। चिड़िया तो पानी पी लेती है लेकिन चुहिया

नदी में गिर जाती है। फिर चिड़िया चुहिया को बचाती है और बोलती है, "मैं नहीं बचाती तो तुम मर ही जाती।" तो चुहिया कहती है, "तुमने क्या बचाया, मैं तो पानी में नहा रही थी।" चुहिया का यह जवाब सुनकर चिड़िया को बुरा तो लगता है फिर भी वह बुरा नहीं मानती है। फिर कभी चिड़िया काँटों की झाड़ी में फँस जाती है तो चुहिया उसे निकालती है और कहती है, "मैं नहीं बचाती तो तुम मर ही जाती।" तब चिड़िया कहती है, "तुमने क्या बचाया, मैं तो काँटों से खेल रही थी।" इस बार बुरा लगने की बारी चुहिया की होती है लेकिन वह बुरा नहीं मानती है। और ऐसी घटनाएँ दोनों के साथ घटती रहती हैं परन्तु फिर भी अन्ततः दोनों दोस्त ही बने रहते हैं।

यहाँ दोनों के बीच संवाद उनकी शैतानियों और उससे उपजी झंप पर आधारित हैं और इस कहानी को सुनते समय बच्चे इनकी बातों पर खूब हँसते हैं। मैंने बच्चों से पूछा कि चिड़िया क्या कर रही है या चुहिया क्या कर रही है तो जवाब मिले कि वो झूठ बोल रही है, बहाना बना रही है या ऐसे ही बोल रही है।

झूठ बोलना पाप है

मैंने अगला प्रश्न किया, "झूठ बोलने और बहाने बनाने में कितना मज़ा आता है ना?" तो बच्चों के बीच सन्नाटा छा गया। किसी भी बच्चे ने 'हाँ' में सर नहीं हिलाया।



“अच्छ कौन-कौन झूठ बोलता है?” मैंने पूछा। कोई जवाब नहीं मिला। मैंने अपना हाथ उठाते हुए कहा, “मैं तो बोलती हूँ झूठ।” फिर पन्द्रह बच्चों में से तीन या चार बच्चों ने हाथ उठाए। जो हाथ उठे वे छोटे बच्चों के ही थे, शायद पहली कक्षा के।

तब पीछे बैठी उनकी टीचर ने टोकते हुए कहा, “नहीं-नहीं, झूठ बोलना गलत बात है, झूठ नहीं बोलते।”

मैंने कहा, “कभी-कभी मज़ाक में बोलने में तो कितना मज़ा आता है ना...?”

अब मैंने पूछा, “हम कब-कब झूठ बोलते हैं?” कोई जवाब नहीं मिला। बच्चों के चेहरों पर तो मुस्कान थी लेकिन अब वे ‘हाँ’ नहीं बोल पा रहे थे। झूठ से जुड़ा हुआ सामाजिक लांछन

उन्हें ‘हाँ’ बोलने ही नहीं दे रहा था और मुझे आश्चर्य हो रहा था कि इतने छोटे बच्चे भी सामाजिक तौर पर इतने अनुकूलित हो चुके हैं।

मैंने कहा, “कभी होमवर्क न करना हो, बाहर खेलने का मन हो या पसन्द का खाना न बना हो तो हम मना करने के लिए बहाने बनाते हैं न। या कभी ऊधम-मस्ती करते हुए अपनी गलती से गिर जाते हैं तो झूठ का सहारा लेते हैं और बोलते हैं कि वो तो ऐसा था कि वहाँ पानी पड़ा हुआ था इसलिए मेरा पाँव फिसल गया, जैसे उस कहानी में चिड़िया बोल रही थी।”

अब बच्चों की हँसी फूटने की कगार पर थी और वे मेरी ‘हाँ’ में ‘हाँ’ भी मिला रहे थे। उनकी टीचर जो लगातार

मेरे हर प्रश्न के जवाब में ज़ोर-ज़ोर-से 'न' में सिर हिलाए जा रही थीं, अगर वहाँ नहीं बैठी होती तो वे खुलकर बोल भी देते।

यह कहानी मैंने जिन तीन स्कूलों में सुनाई, वे तीनों एक-दूसरे से बिलकुल अलग थे – एक शहर के पास स्थित ग्रामीण स्कूल था, एक शहर की बस्ती में स्थित था और एक आदिवासी ग्रामीण स्कूल था। लेकिन बच्चों की प्रतिक्रिया कमोबेश एक जैसी थी। झूठ बोलने की बात आते ही सन्नाटा छा जाता था।

बहाने बनाना, झूठ बोलना और शैतानी करना भी बच्चों के लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना खाना खाना या पानी पीना। बच्चे जितने विश्वास और साहस से झूठ बोल लेते हैं और उस पर टिके भी रहते हैं, बड़ों के लिए वह उतना ही मुश्किल होता है। कृष्ण की बाल-लीलाओं में ये सारे झूठ प्रपंच और खेल देखने को मिलते हैं - 'मेया मोरी में नहिं माखन खायो, मैं बालक बहियन को छोटो, छींको किहि बिधि पायो। ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।'

ये स्वाभाविक गुण कक्षा के अन्दर बने रहना भी ज़रूरी है जो बच्चों के एक खास तरह के समाजीकरण की वजह से नहीं हो पाता। 'सदा सच बोलो' और 'झूठ बोलना पाप है' जैसे उपदेशों से कक्षा की दीवारें भरी रहती हैं। बच्चों को सुनाई जाने वाली कहानियों में भी नैतिक शिक्षा की भरमार

होती है। कहानियाँ और कविताएँ सुनाने का उद्देश्य ही उन्हें नैतिक शिक्षा देना और कुछ खास आदर्शवादी गुण या भावनाएँ विकसित करना बन जाता है।

कहानी-कविताओं द्वारा नैतिक शिक्षा

बस्ती वाले स्कूल में जब बच्चे मुझसे कई कहानियाँ सुन चुके थे तो उनकी टीचर ने कहा, "अब ये आपको कविताएँ सुनाएँगे।" फिर कविताओं की जो झड़ी लगी तो रुकी नहीं लेकिन उनमें से ज़्यादातर कविताएँ नैतिक शिक्षा के उपदेशों से भरी हुई थीं, जैसे-

- माँ खादी की चादर दे दे, मैं गाँधी बन जाऊँगा, सब मित्रों के बीच बैठकर रघुपति राघव गाऊँगा।
- हम सुन्दर बालक हैं, हमें ज्ञान दे दो माँ।
- गन्दी बात, सुबह उठकर ब्रश न करना छी-छी गन्दी बात, बड़ों को सुबह उठकर प्रणाम न करना छी-छी गन्दी बात..

यह आम मान्यता है कि नैतिक शिक्षा उपदेश के द्वारा ही दी जा सकती है। इसीलिए 'हमें झूठ नहीं बोलना है' कहकर वयस्क आश्वस्त हो जाते हैं कि अब बच्चे झूठ नहीं बोलेंगे लेकिन ऐसा होता नहीं है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का कहना है कि नैतिक शिक्षा कक्षा में व्याख्यान से नहीं दी जा सकती, उसे तो वातावरण से देना होता है। अध्यापक का आचरण

और उसके कार्यों की नैतिकता विद्यार्थियों के नैतिक विकास के लिए श्रेष्ठ पाठ प्रस्तुत करती है। उनसे प्रेरणा पाकर विद्यार्थी अपने चरित्र का निर्माण करने का प्रयास करता है।

हँसी-टिठोली बनाम संवेदना

क्या बच्चों के लिए भी हास्य के वही मायने और परिस्थितियाँ होती हैं जो बड़ों के लिए हैं? बड़ों के लिए जो हास्य होता है, क्या वह बच्चों के लिए एक 'संवेदनशील' परिस्थिति होती है? क्या हम बड़े भी बचपन में अधिक 'संवेदनशील' हुआ करते थे और हमारे समाजीकरण की प्रक्रिया ने हमें 'संवेदनाशून्य' बना दिया है? ये कुछ सवाल हैं जिनके बारे में मैं शायद ही विचार कर पाती, अगर मेरे ढाई साल के बेटे जसकरन ने मुझे इस ओर सोचने के लिए मजबूर न किया होता।

तो हुआ यह कि मैं उसे रूम टू रीड द्वारा प्रकाशित किताब *चतुर चूहा और बुद्ध बन्दर* से कहानी पढ़कर सुना रही थी। हालाँकि, इस कहानी के शीर्षक के साथ भी विशेषणगत मान्यताओं और छवियों की समस्या है, लेकिन अभी मुद्दा यह नहीं है। तो कहानी का सार कुछ ऐसा है।

चतुर चूहा और बुद्ध बन्दर दोस्त हैं। वे साथ मिलकर खेती करने की सोचते हैं। वे मिलकर अलग-अलग तरह की फसलें उगाते हैं और फसल बँटवारे के समय चूहा हर बार बन्दर से पूछता है कि तुम ऊपर का हिस्सा लोगे या नीचे का। जैसा कि बुद्ध नाम

से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है, बुद्ध बन्दर हर बार गलत हिस्सा चुन बैठता है। पहली बार जब वे गेहूँ की फसल उगाते हैं तो मूर्ख बन्दर नीचे का हिस्सा माँग लेता है और उसके हिस्से में सिर्फ जड़ें ही आती हैं। जब अगली बार आलू की फसल उगाई जाती है तो पिछले अनुभव से सीख लेते हुए बन्दर इस बार ऊपर का हिस्सा लेना पसन्द करता है। लेकिन चूहे की चालाकी से उसे ऊपर का हिस्सा यानी पत्ते ही मिलते हैं। जब बन्दर अपने घर कभी जड़ें, तो कभी पत्ते लेकर जाता, तो उसे घर पर डौंट पड़ती है। लेकिन तीसरी और आखिरी बार जब बन्दर और चूहा मिलकर भुट्टे की फसल उगाते हैं तो बन्दर अपने अनुभवों से सीख लेते हुए ऊपर और नीचे, दोनों का हिस्सा माँगता है, लेकिन भुट्टे तो बीच में उगते हैं और इस बार भी बेचारे बन्दर के हिस्से में पत्ते और टूँठ इत्यादि ही आते हैं। जब वह पत्ते लेकर घर जा रहा होता है तो चूहा हँसकर उसे बुलाता है और कुछ भुट्टे देकर घर भेज देता है। इस बार बन्दर को घर में सब प्यार करते हैं क्योंकि वह भुट्टे लेकर आया है।

जसकरन ने काफी ध्यान से पूरी कहानी सुनी और अन्त में वह बार-बार यही पूछता रहा कि फिर पत्तों का क्या हुआ। जब चूहा ऊपर का हिस्सा यानी 'गेहूँ' और बन्दर नीचे का हिस्सा यानी 'जड़ें' ले जाता था तो जसकरन का चेहरा बुझ-सा जाता था।

यह कहानी ढेरों बार सुनी-सुनाई गई और हर बार जसकरन जरूर पूछता, “बन्दर को फिर से डाँट पड़ी? अच्छा बन्दर को फिर डाँटा मम्मी-पापा ने? चूहे को तो डाँट नहीं पड़ी?” ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने कुछ पूछा न हो। इससे मुझे यह महसूस हुआ कि इस कहानी में ऐसा कुछ है जो उसे उलझा रहा है या समझ नहीं आ रहा है। आलू ज़मीन के नीचे उगते हैं, गेहूँ ऊपर और भुटटे बीच में – यह किसी तीन साल के शहरी बच्चे के लिए बिना देखे समझना मुश्किल तो है लेकिन इसके साथ चूहे का व्यवहार भी शायद उसे उलझाता था। लगभग साल भर तक यह कहानी सुनाने के बाद भी इस कहानी में उसकी रुचि बरकरार रही।

उसके हाव-भाव और बातों से मुझे लगा कि उसने यह महसूस किया कि इस कहानी में एक पात्र के साथ लगातार अन्याय या कुछ गलत हो रहा है जिसे देखकर हम तो मज़े ले रहे हैं लेकिन उसे वैसा नहीं लग रहा था। बच्चे के हावभाव व सवालों से मुझे समझ आया कि कोई पात्र अपनी चालाकी से किसी का फायदा उठा ले, यह एक बड़े व्यक्ति के नज़रिए से उचित हो सकता है लेकिन बच्चे के नज़रिए से नहीं



क्योंकि संवेदनशीलता बच्चों का सहज मानवीय गुण है।

दूसरी घटना चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित *बुढ़िया की रोटी* किताब सुनाने के समय की है। यँ तो मौखिक रूप से जसकरन ने यह कहानी ढेरों बार मुझसे रात को सोने के समय सुनी। लेकिन जब एक दिन मैंने उसे किताब से कहानी पढ़कर सुनाई, तब पहली बार उसे किताब के चित्र देखने का मौका भी मिला। अन्तिम चित्र में एक ओर बुढ़िया अपनी रोटी लेकर खुशी-खुशी वापिस जा रही है और

दूसरी तरफ अकेला कौवा है जिसे रोटी वापिस करनी पड़ी। दोनों पन्नों पर सिर्फ बुढ़िया और कौवे के चित्र हैं और कौवा मुड़कर 'रोटी लेकर जाती हुई बुढ़िया' को देख रहा है। पूरी कहानी सुनने के बाद जसकरन ने पूछा, "अब वो कैसे करेगा? क्या खाएगा? अकेला कैसे रहेगा?" और यह कहते-कहते जसकरन रुआँसा होकर खुद भी रोने लगा।

मुझे एहसास हुआ कि चित्र कितना सशक्त माध्यम है, अपनी बात को कहने का। मौखिक रूप से कहानी सुनाने में कौवे का 'अकेले और भूखे' रह जाने का बिम्ब उस तरह नहीं उभर पाया था जिस तरह चित्रों के साथ सुनाने से उभरा होगा। अपने लिए तो छोटा बच्चा इन दोनों परिस्थितियों को झट-से समझ लेता है। वह भूखे होने पर भी रोता है और अकेले होने पर भी। लेकिन किसी किताब के एक पात्र के लिए यह भाव समझ पाना खासी संवेदनशीलता की माँग करता है।

बेशक हमारे लिए किसी इन्सान की भूख एक जानवर पात्र की भूख से ज़्यादा मायने रखती है। लेकिन बच्चे के

लिए इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। वह दोनों को एक-सा ही देख पा रहा है। उसके लिए दोनों की 'भूख और अकेलापन' बराबर हैं। अभी भी जसकरन यह कहानी बार-बार सुनता है और हर बार अन्त में पूछता है, "अब कौवा क्या खाएगा?"

संवेदनशीलता का एक अन्य वाकया

कुछ इसी तरह का वाकया रूम टू रीड द्वारा प्रकाशित किताब घर को पढ़कर सुनाते वक्त हुआ।

किताब का सार कुछ ऐसा है, एक साही (Porcupine) अपना घर टूट जाने के बाद, अपने लिए एक नया घर ढूँढ़ने निकलती है और इस यात्रा में अलग-अलग जानवरों के आवासों (जैसे



घोंसला, बिल, मकड़ी का जाला और पोखर आदि) को परखने के बाद अपना ठिकाना खुद बनाने का निर्णय लेती है यानी अपने लिए एक माँद बनाती है।

कहानी में पहले ही पेज पर दिखाया गया है कि हाथियों के एक झुण्ड के निकलने से साही का घर कुचलकर टूट जाता है। और कहानी का पहला वाक्य कुछ इस तरह है, “अरे! मेरा घर तो टूट गया।” (साही कहती है)। इस पर जसकरन का हर बार यही जवाब होता था, “नहीं टूटा।”। कम-से-कम दस बार तो ऐसा ही हुआ कि मैंने उसे कहानी सुनाई और इस वाक्य के जवाब में वो हर बार कहता था, “नहीं टूटा!” फिर ग्यारहवीं बार मैंने पहले वाक्य को बदल दिया और कहा, “साही के घर हाथी आए।” तब जसकरन ने खुद कहा, “नहीं, उसका घर तो टूट गया।” उसकी प्रतिक्रिया से मुझे लगा कि बच्चों को किसी भी चीज़ का टूटना-फूटना पसन्द नहीं। और शायद किसी कहानी की शुरुआत एक नकारात्मक वाक्य से नहीं होनी चाहिए और यह भावनात्मक रूप से भी सही नहीं है।

जसकरन की साइकिल भी गिर जाए तो ज़ोर-ज़ोर-से रोता है। कोई खिलौना टूट जाए तो बार-बार आकर बताता है – देखो यह कार टूट गई, इसका टायर पंचर हो गया या फलॉ खिलौना खराब हो गया। किसी के घर का टूट जाना तो एक बच्चे के लिए शायद बहुत ही बड़ी दुर्घटना है। और हमें शायद पता भी नहीं होता कि बच्चे का किस चीज़ से कितना भावनात्मक जुड़ाव है और उसके टूट जाने की स्थिति में बच्चा कैसे व्यवहार करेगा।

यह विचार करना ज़रूरी है कि बच्चों के लिए कैसा साहित्य रचा जाए क्योंकि ज़्यादातर किताबें हम वयस्क-दृष्टिकोण से ही रचते हैं। बच्चे किस किताब पर क्या प्रतिक्रिया देंगे और किसे कितना पसन्द करेंगे, यह शायद ही हम सोचते हों। किताबों की चयन प्रक्रिया भी ऐसी हो कि पढ़ने के शुरुआती स्तर के बच्चों के लिए कम-से-कम नकारात्मक चरित्र या बातें हों और साथ ही संवेदनशीलता भी हो क्योंकि पाँच वर्ष की उम्र तक के बच्चों की दुनिया ज़्यादातर अपने इर्द-गिर्द ही सिमटी रहती है और वे हरेक को खुश देखना चाहते हैं।

पारुल बत्रा: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, भोपाल में कार्यरत हैं।

सभी चित्र: निशित मेहता: महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी ऑफ वडोदरा से विजुअल आर्ट्स में स्नातक। वर्तमान में महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी से कला का इतिहास विषय में स्नातकोत्तर कर रहे हैं।